भरतजी का अयोध्या लौटना, भरतजी द्वारा पादुका की स्थापना, नन्दिग्राम में निवास और श्री भरतजी के चरित्र श्रवण की महिमा

चौपाई :

*** मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू। प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥1॥

भावार्थ:

मुनि, ब्राह्मण, गुरु वशिष्ठजी, भरतजी और राजा जनकजी सारा समाज श्री रामचन्द्रजी के विरह में विह्वल है। प्रभु के गुण समूहों का मन मेंस्मरण करते हुए सब लोग मार्ग में चुपचाप चले जा रहे हैं॥1॥

*** जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥ उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥2॥

भावार्थ:

(पहले दिन) सब लोग यमुनाजी उतरकर पार हुए। वह दिन बिना भोजन के हीबीत गया। दूसरा मुकाम गंगाजी उतरकर (गंगापार श्रृंगवेरपुर में) हुआ। वहाँराम सखा निषादराज ने सब सुप्रबंध कर दिया॥2॥

*** सई उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए॥ जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥3॥

भावार्थ:

फिर सई उतरकर गोमतीजी में स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्याजी जा पहुँचे। जनकजी चार दिन अयोध्याजी में रहे और राजकाज एवं सब साज-सामान को सम्हालकर,॥3॥

*** सौंपि सचिव गुर भरतहिं राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥ नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥4॥

भावार्थ:

तथा मंत्री, गुरुजी तथा भरतजी को राज्य सौंपकर, सारा साज-सामान ठीक करके तिरहुत को चले। नगर के स्त्री-पुरुष गुरुजी की शिक्षा मानकर श्रीरामजी की राजधानी अयोध्याजी में सुखपूर्वक रहने लगे॥4॥

दोहा :

*** राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास। तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥322॥

भावार्थ:

सब लोग श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखों को छोड़-छाड़कर अवधि की आशा पर जी रहे हैं॥322॥

चौपाई :

*** सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥ पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥1॥

भावार्थ:

भरतजी ने मंत्रियों और विश्वासी सेवकों को समझाकर उद्यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काम में लग गए। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उनको सौंपी॥1॥

*** भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥ ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू॥2॥

भावार्थ:

ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम कर अवस्था के अनुसार विनय और निहोरा किया कि आप लोग ऊँचा-नीचा (छोटा-बड़ा), अच्छा-मन्दा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिए आज्ञा दीजिएगा। संकोच न कीजिएगा॥2॥

*** परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥ सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥3॥

भावार्थ:

भरतजी ने फिर परिवार के लोगों को, नागरिकों को तथा अन्य प्रजा को बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित वे गुरुजी के घर गए और दंडवत करके हाथ जोड़कर बोले-॥3॥

*** आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥ समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥4॥

भावार्थ:

आज्ञा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ मुनि वशिष्ठजी पुलकित शरीर हो प्रेम के साथ बोले- हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही जगत में धर्म का सार होगा॥4॥

दोहा :

*** सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि। सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥323॥

भावार्थ:

भरतजी ने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभु की चरणपादुकाओं को निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया॥323॥

चौपाई :

*** राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥ नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥1॥

भावार्थ:

फिर श्री रामजी की माता कौसल्याजी और गुरुजी के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरणपादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरतजी ने नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में निवास किया॥1॥

*** जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥ असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥2॥

भावार्थ:

सिर पर जटाजूट और शरीर में मुनियों के (वल्कल) वस्त्र धारण कर, पृथ्वी को खोदकर उसके अंदर कुश की आसनी बिछाई। भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे॥2॥

*** भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥ अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥3॥

भावार्थ:

गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन और वचन से तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इन्द्र सिहाते थे और (जहाँ के राजा) दशरथजी की सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे,॥3॥

*** तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥ रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥4॥

भावार्थ:

उसी अयोध्यापुरी में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पा के बाग में भौंरा। श्री रामचन्द्रजी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगैश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं)॥4॥

दोहा :

*** राम प्रेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति। चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥B24॥

भावार्थ:

फिर भरतजी तो (स्वयं) श्री रामचन्द्रजी के प्रेम के पात्र हैं। वे इस (भोगैश्वर्य त्याग रूप) करनी से बड़े नहीं हुए (अर्थात उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है)। (पृथ्वी पर का जल न पीने की) टेक से चातक की और नीर-क्षीर-विवेक की विभूति (शक्ति) से हंस की भी सराहना होती है॥324॥

चौपाई :

*** देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥ नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥1॥

भावार्थ:

भरतजी का शरीर दिनों-दिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदि से उत्पन्न होने वाला मेद) घट रहा है। बल और मुख छबि (मुख की कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। राम प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात प्रसन्न है)॥1॥

*** जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥ सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥2॥

भावार्थ:

जैसे शरद ऋतु के प्रकाश (विकास) से जल घटता है, किन्तु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि भरतजी के हृदयरूपी निर्मल आकाश के नक्षत्र (तारागण) हैं॥2॥

*** ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥ राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥3॥

भावार्थ:

विश्वास ही (उस आकाश में) ध्रुव तारा है, चौदह वर्ष की अवधि (का ध्यान) पूर्णिमा के समान है और स्वामी श्री रामजी की सुरति (स्मृति) आकाशगंगा सरीखी प्रकाशित है। राम प्रेम ही अचल

(सदा रहने वाला) और कलंकरहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य सुंदर सुशोभित है॥3॥

*** भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥ बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥4॥

भावार्थ:

भरतजी की रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल, गुण और ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी सुकवि सकुचाते हैं, क्योंकि वहाँ (औरों की तो बात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वती की भी पहुँच नहीं है॥4॥

दोहा :

*** नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति। मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥325॥

भावार्थ:

वे नित्य प्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं, हृदय में प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँगकर वे बहुत प्रकार (सब प्रकार के) राज-काज करते हैं॥325॥

चौपाई :

*** पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥ लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥1॥

भावार्थ:

शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीता-रामजी हैं। जीभ राम नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेम का जल भरा है। लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी तो वन में बसते हैं, परन्तु भरतजी घर ही में रहकर तप के द्वारा शरीर को कस रहे हैं॥1॥

*** दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥ सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥2॥

भावार्थ:

दोनों ओर की स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरतजी सब प्रकार से सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और नियमों को सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं॥2॥

*** परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥ हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥3॥

भावार्थ:

भरतजी का परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुंदर और आनंद-मंगलों का करने वाला है। कलियुग के कठिन पापों और क्लेशों को हरने वाला है। महामोह रूपी रात्रि को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है॥3॥

*** पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥ जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥4॥

भावार्थ:

पाप समूह रूपी हाथी के लिए सिंह है। सारे संतापों के दल का नाश करने वाला है। भक्तों को आनंद देने वाला और भव के भार (संसार के दुःख) का भंजन करने वाला तथा श्री राम प्रेम रूपी चन्द्रमा का सार (अमृत) है॥4॥

छन्द :

*** सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को। मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥ दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को। कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

भावार्थ:

श्री सीतारामजी के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण भरतजी का जन्म यदि न होता, तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता? दुःख, संताप,

दरिद्रता, दम्भ आदि दोषों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? तथा कलिकाल में तुलसीदास जैसे शठों को हठपूर्वक कौन श्री रामजी के सम्मुख करता?

सोरठा :

*** भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं। सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥326॥

भावार्थ:

तुलसीदासजी कहते हैं- जो कोई भरतजी के चरित्र को नियम से आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय रस से वैराग्य होगा॥326॥

मासपारायण, इक्कीसवाँ विश्राम इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीयः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के सम्पूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले श्री रामचरित मानस का यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ॥

(अयोध्याकाण्ड समाप्त)